|| श्रीहरिः ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 17: श्रद्धात्रयविभागयोग

2/2 (श्लोक 13-28), रविवार, 15 जनवरी 2023

विवेचक: गीता विशारद श्री श्रीनिवास जी वर्णेकर

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/uSpYJLphmww

मनुष्य की प्रवृत्ति अनुसार श्रद्धा के प्रकार

प्रस्तावना :- आज का विवेचन भगवान श्री कृष्ण की आरती और दीप प्रज्ज्वलन से प्रारम्भ हुआ। आज **मकर संक्रान्ति** के शुभ अवसर पर गीता जी का ध्यान करते हुए प्रभु की प्रार्थना करते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता का सत्रहवां अध्याय, इसे हम एक शब्द में दर्पण भी कह सकते हैं। हमारा स्वरूप भी उसमें दिखाई देता है। ऐसा ही स्वरूप दिखाने वाला दर्पण यह सत्रहवां अध्याय है। हम किस प्रकार के गुणों के साथ रह रहे हैं? हमारी सात्विकता कैसे बढ़ सकती है? यही देखने के लिए कि हमारे भीतर सत्व, रज और तमो गुणों का कार्य प्रकट कैसे होता है? सात्विक व्यक्ति किस प्रकार के भगवान की पूजा करता है? सात्विक, राजसी एवं तमोगुणी मनुष्य कैसे पूजा करते हैं? अलग-अलग प्रकार के भोजन और पूजा, उसी के अनुसार हमारी श्रद्धा रहती है। हमारी वृत्ति कैसी है? यही दिखाने वाला यह अध्याय है। इसी अध्याय में भगवान यज्ञ के बारे में कहते हैं। इसमें अर्जुन ने सबसे पहले भगवान से यही प्रश्न पूछा है कि यदि मैं सारे शास्त्रों को नहीं जानता हूँ लेकिन मेरी श्रद्धा है, तो मेरी जो निष्ठा है वह सात्विक, राजसी या तामसिक में से किस प्रकार की होगी? भगवान कहते हैं कि यही श्रद्धा, तीन प्रकार की हो जाती है। यही श्रद्धा **सात्विक**, **राजसी** और **तामसिक** बन जाती है। भगवान ने अर्जुन को यही सारी बातें बताई और हमें यज्ञ के बारे में बताया।

यज्ञ अर्थात अपने कर्तव्य कर्म करते हुए, सात्विक राजसिक और तामसिक कैसे हो जाते हैं? आकांक्षा अपेक्षा ना रखते हुए सत्कार्य करते हैं, और यज्ञ किए जाते हैं तो वह सात्विक कहलाते हैं। लेकिन फल की इच्छा रखते हुए, कि मुझे क्या मिलेगा। यही बात सोचते हुए यह मुझे मिलेगा कि नहीं। जब यह यज्ञ किया जाता है और दिखावे के लिए यज्ञ किया जाता है, तो वह यज्ञ राजसी कहलाता है। स्तोत्र में एक फल श्रुति लिखी रहती है कि यह स्तोत्र कहने से क्या फल मिलेगा। लोगों का ध्यान सबसे पहले वहीं जाता है कि मैं यह काम किस लिए करूं और मुझे क्या मिलेगा? फल के लिए स्तोत्र पढ़ना, भगवान की स्तुति भी करना तो किसलिए, क्योंकि हमें फल चाहिए? क्या यह बुरा है? नहीं यह बुरा तो नहीं है। भगवान का स्तोत्र गाना अच्छा कार्य है, किंतु यह फल श्रुति के लिए किया जाता है तो यह मध्यम बन जाता है। और तामसी यज्ञ किस प्रकार का होता है ? तामसी यज्ञ के बारे में भगवान आगे कहते हैं।

17.13

विधिहीनमसृष्टान्नं(म्), मन्त्रहीनमदक्षिणम्|
श्रद्धाविरहितं(म्) यज्ञं(न्), तामसं(म्) परिचक्षते||17.13||

शास्त्र विधि से हीन, अन्न-दान से रहित, बिना मन्त्रों के, बिना दक्षिणा के (और) बिना श्रद्धा के किये जाने वाले यज्ञ को तामस यज्ञ कहते हैं।

विवेचन :- श्रीभगवान कहते हैं कि श्रद्धा का तो नाम भी नहीं है। विधि में बताया गया है। जैसे हम कोई प्रयोगशाला में प्रयोग करते हैं तो उसे भी विधि से किया जाता है। डॉक्टर भी ऑपरेशन करते हैं तो उसकी भी एक विधि होती है। उनके ऑपरेशन के उपकरण कैसे रखने चाहिए? उसकी भी एक विधि होती है। वह भी उन सारे नियमों के अनुसार ही किया जाता है, तो ही वह सही होता है। किसी भी तरह से करने पर तो यह विधिहीन होता है। बहुत धन कमाया है परंतु दान देने की इच्छा नहीं है। किसी भूखे व्यक्ति को खिलाना, इतना तो दान होना ही चाहिए। यदि दान किए बिना ही यज्ञ करते हैं वह सफल नहीं है।

मंत्रहीनम - शादी में पंडित जी आते हैं तो उन्हें हम कहते हैं कि जल्दी-जल्दी मंत्र बोलिए। ज्यादा मंत्र बोलने की आवश्यकता नहीं है। बस हार पहना दो तो हो गया विवाह और दक्षिणा देने का समय आता है तो और हाथ सिकुड़ जाते हैं। यह **अदीक्षणम** है। यदि किसी से कोई कार्य करवाते हैं तो उसका मोल तो उन्हें देना ही चाहिए। हम देखते हैं कि परामर्श की फीस देने के समय भी बहुत जान निकलती हैं। उन्हें लगता है कि परामर्शदाता को क्या देना है? उसने तो सिर्फ बताया ही है। परंतु उसे उसके ज्ञान के लिए कुछ दक्षिणा तो मिलनी ही चाहिए। जो ज्ञान उसने अर्जित किया है, इसलिए उसे कुछ देना हमारा कर्तव्य होता है। वह चाहे मांगे या ना मांगे। किंतु उन्हें यह ना लगे कि यह मांगने के बाद भी कुछ नहीं देना चाहते। यह **अदीक्षणम** भी श्रद्धा विहीन यज्ञ है। उसे तामस ही कहा गया है। यह तमोगुण के प्रभाव में किया हुआ कर्म है। इसके बाद आता है **तप**। इस अध्याय में भगवान कहते हैं कि बाकी सारी बातें छोड़कर **यज्ञ**, **दान** और **तप** यह तीन कर्म तो करने ही चाहिए। इसमें जो **तप** है वह बहुत महत्वपूर्ण है। तप का अर्थ क्या है? अपना कर्तव्य कर्म करने के लिए सुख- दुख, लाभ - हानि सहन करना, यही तप है।

युधिष्ठिर से जो यक्ष ने जो प्रश्न पूछे हैं। इसमें एक महत्वपूर्ण प्रश्न है कि तप क्या है? युधिष्ठिर ने एक ही वाक्य में उत्तर दिया- स्वधर्म का पालन करना, यही तप है। स्वधर्म शब्द का अर्थ क्या है? धर्म शब्द का अर्थ है- कर्तव्य। भगवदगीता में मुख्य रूप से धर्म शब्द कर्तव्य का ही रूप है। मातृ धर्म, पितृ धर्म, पुत्र धर्म, सेवक धर्म, राजधर्म, राष्ट्रधर्म यह सारे धर्म शब्द का प्रयोग हम जानते हैं। यह कर्तव्य के रूप में आते हैं। अपने कर्तव्य का पालन करना ही स्वधर्म है। यह एक तप है। तभी तो ये सत, रज, तम गुणों के प्रभाव से सात्विक, राजसिक और तामसिक बन जाते हैं।

श्रीभगवान कहते हैं - तप भी तीन प्रकार के होते हैं। एक है शरीर द्वारा होने वाला तप, दूसरा वाणी के द्वारा होने वाला तप, तीसरा मन के द्वारा होने वाला तप, शरीर तप, वाचन तप, मानसिक तप। तो ये तीन तप क्या हैं ।

17.14

देवद्विजगुरुप्राज्ञ, पूजनं(म्) शौचमार्जवम्|
ब्रह्मचर्यमहिंसा च, शारीरं(न्) तप उच्यते||17.14||

देवता, ब्राह्मण, गुरुजन और जीवन्मुक्त महापुरुष का यथायोग्य पूजन करना, शुद्धि रखना, सरलता, ब्रह्मचर्य का पालन करना और हिंसा न करना - (यह) शरीर-सम्बन्धी तप कहा जाता है।

विवेचन :- देव, द्विज, गुरु, देवी - देवताओं का पूजन करना। कुछ लोग कहते हैं कि यह पूजा करने की क्या आवश्यकता है। हम तो मन ही मन में पूजा कर सकते हैं। भगवान को नहलाना, भगवान को अच्छे वस्त्र पहनाना, फिर भगवान जी को तिलक लगाना, कुमकुम अर्पण करना, यह सब करने की क्या आवश्यकता है? इन सारी बातों की भगवान को आवश्यकता नहीं है। यह सारा हमारे लिए शारीरिक तप है। हमें शरीर को अनुशासन बद्ध करना, यह उसका उपयोग है। हमें ऐसे ही करना चाहिए उससे अनुशासन बना रहता है। भगवद्गीता हमें स्थूल से सूक्ष्म को नियंत्रण में कैसे करना है? यही सिखाती है। सबसे पहले शरीर पर नियंत्रण आ जाए, इसलिए पहले शारीरिक तप बताया गया है। शरीर के द्वारा यह सारी बातें करना, देवताओं का

पूजन करना, ब्राह्मणों का पूजन करना, सद्गुरु का पूजन करना, ज्ञानी व्यक्तियों का पूजन करना। इसके लिए कुछ नियमों के अनुसार पूजा करना। पूजा करने के लिए बिना नहाए नहीं बैठना चाहिए। एक नियत समय पर स्नान कर, स्वच्छ होकर, मन को प्रसन्न रखते हुए, भगवान की पूजा करना चाहिए। इससे हमें अनुशासन मिलता है। भगवान के लिए इससे क्या लाभ - हानि है, यह सोचने की हमें कोई आवश्यकता नहीं है। हमारा लाभ यह है कि हमारा शरीर अनुशासन बद्ध हो जाता है।

शौच शब्द का अर्थ है शुचिता। शौच शब्द में तीन बातें आती हैं। एक है स्वच्छता, दूसरी है शुद्धता, तीसरी है पवित्रता। यह तीनों बातें ही शौच शब्द में आती है। जैसे एक ग्लास में जल रखा है और बिल्कुल स्वच्छ है, लेकिन उसमें बैक्टीरिया भी है। परंतु आपको लगेगा वह स्वच्छ है लेकिन शुद्ध नहीं है। यह स्वच्छ भी होना चाहिए और शुद्ध भी होना चाहिए और यदि आपको पता चलता है कि यह स्वच्छ भी है, शुद्ध भी है तो यह गंगाजल है। उसमें पवित्रता अपने आप आ जाती है। स्वच्छता, शुद्धता और पवित्रता तीनों को धारण करना हैं। केवल शरीर को शुद्ध कर लिया, नहा लिया ऐसा नहीं है। अंतरंग भी शुद्ध होना चाहिए। तभी शरीर स्वच्छ होता है। मन में आने वाले अन्य विचारों को टाल कर भगवान का स्मरण करके फिर पूजा में लग जाना।

आर्जवम सरलता को कहते हैं। मन की सरलता जो मन में है वही व्यवहार में होना चाहिए। सरल स्वभाव होना चाहिए। भगवान का स्मरण करते हुए तप में लगे रहना, यह ब्रह्मचर्य का तप है। कोई कहता है हम गृहस्थ हैं तो हम ब्रह्मचर्य का पालन कैसे कर सकते हैं। परंतु पत्नी व्रत का पालन भी ब्रह्मचर्य ही है।

अहिंसा शब्द के बारे में जितना बोले उतना ही कम है। अपनी वाणी से भी दूसरों का दिल नहीं दुखाना है, यह भी अहिंसा है। यदि हिंसा रोकने के लिए ही हिंसा करनी पड़ती है तो भी अहिंसा है। **अहिंसा परमो धर्मा, अहिंसा तथैव च** यानि कर्तव्य के रूप में भी किसी की हिंसा करनी होती है तो वह भी अहिंसा कहलाती है। जल्लाद दोषियों को फांसी पर लटकाते हैं तो उनके द्वारा तो वह हिंसा हो गई, परंतु वह हिंसा नहीं है। वह उसका कर्तव्य है। न्यायाधीश मृत्युदंड देता है तो मृत्युदंड सुनाना क्या हिंसा है? नहीं। यह हिंसा नहीं है। वह तो कर्तव्य पालन कर रहे हैं। हिंसा शब्द को समझना अति महत्वपूर्ण है। किसी को अपनी वाणी से दुख पहुंचाना यह भी हिंसा होती है। इसे अच्छी तरह से समझ कर अहिंसा का पालन करना चाहिए। यह शारीरिक तप है। भगवान कहते हैं यह शरीर द्वारा किया जाने वाला तप है। इसी प्रकार से वाणी के द्वारा भी तप किया जाता है। तप नहीं करेंगे ऐसा नहीं हो सकता। यह सब तो करना ही पड़ेगा। श्रीभगवान कहते हैं यज्ञ, दान और तप। इनका कभी त्याग नहीं करना चाहिए। इसको तो करते ही रहना है।

ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं तप क्या है -
तप यानी पमात्म स्वरूप प्राप्ति के लिए, आत्मज्ञान के लिए, इंद्रियों से थोड़ा कष्ट सहन करना, यही तप है।

श्री रामदास स्वामी जी कहते हैं -

सुख पाता कीर्ति नहीं, कीर्ति पाता सुख नहीं। सुख मिलेगा तो कीर्ति भी नहीं मिलती। भगवद प्राप्ति की तो बात ही नहीं है। इसके लिए सुख को छोड़ना पड़ता है, यानी कष्ट सहना पड़ता है। और यही सहन करना, उसी को तप कहते हैं। इसी प्रकार हमारी वाणी का भी तप होता है।

17.15

अनुद्वेगकरं(म्) वाक्यं(म्), सत्यं(म्) प्रियहितं(ञ्) च यत्|
स्वाध्यायाभ्यसनं(ञ्) चैव, वाङ्मयं(न्) तप उच्यते||17.15||

जो किसी को भी उद्विग्न न करने वाला, सत्य और प्रिय तथा हितकारक भाषण है (वह) तथा स्वाध्याय और अभ्यास (नाम जप आदि) भी - यह वाणी-सम्बन्धी तप कहा जाता है।

विवेचन :-

वाङ्मय तप यानी वाणी का तप। हमारे शब्दों के द्वारा किसी को दुख ना पहुंचे।

"ऐसी वाणी बोलिए मन का आपा खोए,
औरन को शीतल करे आपहू शीतल होय"

अर्थात हमेशा ऐसी भाषा बोलनी चाहिए जो सामने वाले को सुनने से अच्छा लगे और उन्हें सुख की अनुभूति हो और साथ ही खुद को भी आनंद का अनुभव हो।

ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं :- **बोल जैसे अमृताचे** जैसे अमृत की लहरें आ रही हो ऐसे ही बोल बोलने चाहिए।
संस्कृत में एक सुंदर सुभाषित है - जिसमें कैसी वाणी बोलनी चाहिए? यह बताया गया है-

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् ,न ब्रूयात् सत्यम् अप्रियम् ।
प्रियं च नानृतम् ब्रूयात् , एष धर्मः सनातनः ॥

अर्थात सत्य बोलना चाहिये, प्रिय बोलना चाहिये, सत्य किन्तु अप्रिय नहीं बोलना चाहिये। प्रिय किन्तु असत्य नहीं बोलना चाहिये; यही सनातन धर्म है। वाणी पर यह नियंत्रण होना चाहिए। हमें यह सोचना चाहिए कि - है तो सत्य, किंतु कहने से दूसरे को अच्छा नहीं लगेगा इसलिए हमें यह कहना नहीं चाहिए।

एक गृहस्थ का निधन हो गया तो उनके मित्र उनके यहाँ मिलने आए। उनका पोता सामने था वह उनसे मिले और उन्हें बताया कि तुम्हारे दादा जी और मैं परम मित्र थे, और हम क्लब में जाकर खूब नाचते थे और पीते थे। अब उस बालक के मन में अपने दादाजी के प्रति जो श्रद्धा है तो उसे बहुत दुख हुआ मित्र को यह नहीं बताना चाहिए था। क्या बोलना चाहिए और क्या नहीं बोलना चाहिए, यह हमें समझना चाहिए।

एक राजा ने तोता पाल रखा था। उस तोते को राजा बहुत प्रेम करता था। वह उसके अलावा कुछ दूसरा नहीं सोचता था। एक दिन राजा के सेवक ने देखा कि पिंजरे में तोता मरा हुआ है। अब राजा को कैसे बताए? उसे लगा कि वह राजा को बताएगा तो उसे दंड मिलेगा। वह प्रधान जी के पास गया और उन्हें बता दिया। अब वह राजा को कैसे बताए कि तोता मर गया प्रधान जी ने कहा तुम चिंता मत करो। मैं उन्हें बता दूंगा। प्रधान जी राजा के पास गए और कहा कि तोता आंखें बंद करके बैठा हुआ है। तो राजा ने कहा फिर क्या हुआ। प्रधान जी बोले ऐसे लग रहा है कि वह ध्यान में बैठा है, कोई भी हलचल नहीं कर रहा है। तो राजा ने कहा सही बताइए। प्रधान जी बोले कि मैंने आवाज दी तो वह बिल्कुल नहीं हिला। तो राजा ने कहा वह कहीं मर तो नहीं गया। प्रधान जी बोले यह तो आप कह रहे हो, मैंने नहीं कहा। उन्होंने सत्य भी बता दिया और दूसरे को दुख भी नहीं हुआ। परंतु जो सत्य है किंतु प्रिय नहीं है तो भी नहीं बोलना चाहिए।

प्रिय तो है परंतु असत्य है। वह भी नहीं बोलना चाहिए। दूसरों को खुश करने के लिए प्रिय और असत्य बात भी नहीं बोलनी चाहिए। बात सत्य हो और दूसरे को प्रिय भी लगे और उसके लिए हित कारक भी होनी चाहिए। जिस प्रकार कोई भी मूर्ख है तो उसे एकदम बोलते हैं कि वह गधा है। संस्कृत में यह नहीं कहते हैं। संस्कृत में गधे को वैशाख नंदन कहते हैं। कैसे वैशाख नंदन हो इससे दूसरे को लगेगा कि उसे नंदन कहा। वास्तव में उसे सच्चाई बता दी। शब्दों का प्रयोग कैसे करना चाहिए यह अत्यंत महत्वपूर्ण बात है। गीता का पाठ हम प्रतिदिन करते हैं। उसका स्वाध्याय भी प्रतिदिन करते हैं। उसे कण्ठस्थ करना यह वाणी का तप है। भगवान के नाम का जप करना यह वाणी का तप है और तीसरा मन के द्वारा किए जाने वाला मानस तप है।

17.16

मनः(फ्) प्रसादः(स्) सौम्यत्वं(म्), मौनमात्मविनिग्रहः|
भावसंशुद्धिरित्येतत्, तपो मानसमुच्यते||17.16||

मन की प्रसन्नता, सौम्य भाव, मननशीलता, मन का निग्रह (और) भावों की भली भाँति शुद्धि - इस तरह यह मन-सम्बन्धी तप

कहा जाता है।

विवेचन :- **प्रसाद** शब्द का अर्थ है प्रसन्नता। यदि हमें छोटा सा भी प्रसाद का दाना मिल जाए तो भी मन प्रसन्न हो जाता है। हमें मन को हमेशा प्रसन्न रखना चाहिए। यह मन का तप है। रण में अर्जुन रो रहे हैं परंतु भगवान प्रसन्न हैं। अर्जुन दुखी हैं परंतु भगवान के उपदेश अर्जुन के दुख को दूर करते हैं। मनुष्य कितना भी अवसाद में हो परंतु जब वह भजन गाने लगता है, और तालियां बजाने लगता है तो उसका सारा डिप्रेशन दूर हो जाता है और वह प्रसन्न हो जाता है। तो यह मन को प्रसन्न रखने का प्रयास है। मन को प्रसन्न रखने का अभ्यास करना यह मन का तप है। मन को शांत रखना मौन शब्द का अर्थ है। किसी से बात न करना अर्थात मनन करना, भगवान का स्मरण करना, चिंतन करना, भगवद्गीता का श्लोक लेकर उसको चिंतन करना यह मन के द्वारा किया हुआ तप है।

स्वर्ण को तपाने से स्वर्ण शुद्ध हो जाता है। वैसे ही तप के द्वारा हमारा शरीर, वाणी और मन शुद्ध हो जाता है। पवित्र हो जाता है। मन पर नियंत्रण रखना, मन को एकाग्र करने का प्रयास करना, यह मन का तप है। मन को एकाग्र करने के लिए क्या करना चाहिए? इसके लिए अष्टांग योग में बहुत से प्रयोग दिए हैं कि कैसे बैठना है, किसी एक वस्तु पर मन को केंद्रित करना, दृष्टि केंद्रित करना, फिर आंखें बंद करके उसका चिंतन करना। भगवान का विग्रह सामने रखकर मन के द्वारा उस मूर्ति का चिंतन करना। यह मन का तप है।

भाव संशुद्धि अच्छे भाव मन में लाना, अच्छे भाव का चिंतन करने का अभ्यास यह भी एक तप है। गलत नहीं बोलना चाहिए, गलत नहीं सुनना, गलत नहीं सोचना चाहिए। ऐसे तो हम कह देते हैं, परंतु हमें पॉजिटिव सोचना चाहिए। इससे मन की शुद्धि हो जाती है और मन में पवित्र भाव आने लगते हैं। यह तप भी तीन प्रकार के होते हैं - शरीर तप, वचन तप और मानसिक तप। इस तरह नौ प्रकार के तप हो गए। तीन प्रकार के शारीरिक तप, तीन प्रकार के वाचक तप, तीन प्रकार के मानसिक तप। यह तप सात्विक, राजसी और तामसिक कब कहलाते हैं यह श्रीभगवान जी ने बताया है।

17.17

श्रद्धया परया तप्तं(न्), तपस्तत्त्रिविधं(न्) नरैः|
अफलाकाङ्क्षिभिर्युक्तैः(स्), सात्त्विकं(म्) परिचक्षते||17.17||

परम श्रद्धा से युक्त फलेच्छा रहित मनुष्यों के द्वारा (जो) तीन प्रकार (शरीर, वाणी और मन) - का तप किया जाता है, उसको सात्त्विक कहते हैं।

विवेचन :- यह तप करने से मुझे कुछ नहीं चाहिए। परंतु यदि कुछ नहीं चाहिए तो हम यह तप क्यों कर रहे हैं? क्योंकि मुझे वह सच्चिदानंद चाहिए। बाकी कुछ नहीं चाहिए। यह तप धन-संपत्ति के लिए नहीं कर रहे हैं, बंगला और गाड़ी के लिए भी नहीं कर रहे हैं, यह तप हम अपने अंतरंग शुद्ध करने के लिए कर रहे हैं। जिससे मुझे भगवान के दर्शन हो जाएं। तप इसलिए किया जाए कि हमें भगवद् प्राप्ति हो जाए। ध्येय प्राप्ति अर्थात भगवद् प्राप्ति। स्वार्थ के लिए कुछ इच्छा मन में है तो वह कामना कहलाती है। परंतु जब कोई विशाल इच्छा हो जाती है। सबके कल्याण की इच्छा हो जाती है तब वह ध्येय कहलाती है।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया,
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुख भागभवेत।

अर्थात सभी प्रसन्न रहें, सभी स्वस्थ रहें, सबका भला हो, किसी को भी कोई दुख ना रहे। इसके लिए जब मनुष्य कार्य करने लगता है तो यह स्वयं के लिए नहीं है। सब के कल्याण के लिए कार्य करना है। सबके कल्याण के लिए किया गया कार्य सात्विक तप कहलाता है। अत्यंत श्रद्धा के द्वारा सब के कल्याण के लिए तीनों प्रकार के कष्ट सह रहा है तो यह सात्विक तप कहा गया है।

17.18

सत्कारमानपूजार्थं(न्), तपो दम्भेन चैव यत्|
क्रियते तदिह प्रोक्तं(म्), राजसं(ञ्) चलमध्रुवम्||17.18||

जो तप सत्कार, मान और पूजा के लिये तथा दिखाने के भाव से किया जाता है, वह इस लोक में अनिश्चित (और) नाशवान फल देने वाला (तप) राजस कहा गया है।

विवेचन :- श्रीभगवान आगे राजसी तप के संबंध में बताते हुए कहते हैं कि ऐसा तप जो दिखावे के लिए किया जाए कि लोग हमारा नाम याद रखें। समाचार पत्र में हमारी फोटो छप जाए कि यह अच्छे बड़े-बड़े काम कर रहे हैं। इसके लिए यह तप कर रहे हैं कि लोग हमारा सत्कार करें। हमारा नाम सब जगह हो और मान सम्मान बढ़े। कभी छोटा सा भी अच्छा काम कर लेते हैं तो तुरंत उसकी फोटो निकालकर डाल देते हैं कि सबको पता चले कि हमने बहुत अच्छा काम किया है। फिर लोग हमारी वाह वाह करें। यह अच्छा काम तो है परंतु फल की इच्छा हो गई तो यह राजसी हो गया। उसमें से सात्विकता चली गई। अपेक्षाएं आते ही सात्विकता चली जाती है। लोग तप इसी दिखावे के लिए करते हैं।

सफाई अभियान में झाड़ू मारते हुए फोटो खींच लेते हैं। वह भी खाली फोटो खींचने के लिए ही झाड़ू पकड़ा है अन्यथा नहीं। यही दंभ है, दिखावा है और भगवान को यह दंभ प्रिय नहीं है। दिखावा प्रिय नहीं है। सोलहवें अध्याय में अभय से लेकर सद्गुणों की सूची प्रारंभ हो जाती है। अभय को सद्गुणों का सेनापति कहा गया है। वैसे ही दुर्गुणों का सेनापति है अभिमान। सबसे पहले सामने आता है अभिमान जो वह नहीं है वही दिखाने का प्रयास करना। जो अच्छे कार्य हमने नहीं किए हैं वह भी दिखाने का प्रयास करना यही अभिमान है। दिखावे के लिए ही तप किया जा रहा है इसी को राजसी तप कहा गया है। इससे कुछ क्षण के लिए तो नाम हो जाएगा, परंतु यह तत्कालिक होगा। लोग कुछ देर के लिए तो नाम ले लेंगे परंतु फिर उसके अभिमान का पता चल जाएगा।

17.19

मूढग्राहेणात्मनो यत्, पीडया क्रियते तपः|
परस्योत्सादनार्थं(म्) वा, तत्तामसमुदाहृतम्||17.19||

जो तप मूढ़तापूर्वक हठ से अपने को पीड़ा देकर अथवा दूसरों को कष्ट देने के लिये किया जाता है, वह (तप) तामस कहा गया है।

विवेचन :- श्रीभगवान तामसिक तप की व्याख्या करते हुए आगे कहते हैं कि मूढ़ता से, हठ से स्वयं को पीड़ा देने वाला और दूसरों को भी कष्ट देने वाला तप, जिससे दूसरों का बुरा हो। यही चिंतन करते हुए किया गया तप, वह तामसी तप हो जाता है। जिसके द्वारा वह स्वयं को भी कष्ट देते हैं और दूसरे का भी बुरा करने की सोचते है। आतंकी स्वयं भी कष्ट सहते हैं, और दूसरों को भी कष्ट देते हैं। यह सब तामसिक तप है। यह अज्ञानता के कारण हो रहा है। कुंभकरण बहुत तपस्वी था। परंतु वह दुष्ट था उसने बहुत तप किया तो देवताओं को उसको वर देना ही पड़ा। तो सभी देवता चिंतित हो गए कि वह कुछ वर मांग लेगा तो बहुत गड़बड़ हो जाएगी। तो सभी देवता सरस्वती माता के पास पहुंचे। तो माता जी ने कहा कि चिंता मत करो मैं उसकी जिह्वा पर जाकर बैठ जाऊँगी और जब कुंभकरण के वर मांगने का समय आया तो वह इतना थका हुआ था तो उसके मुंह से निकला कि मुझे तो बस नींद ही चाहिए और मुझे कुछ नहीं चाहिए। तो भगवान ने कहा " तथास्तु " उससे उसे छह महीने की नींद मिली और एक दिन जागना और वह जाकर सो गया। तो उसने अपने हठ से जो तप किया था, वह उसका तामसिक तप था।

17.20

दातव्यमिति यद्दानं(न्), दीयतेऽनुपकारिणे|
देशे काले च पात्रे च, तद्दानं(म्) सात्त्विकं(म्) स्मृतम्||17.20||

दान देना कर्तव्य है - ऐसे भाव से जो दान देश, काल और पात्र के प्राप्त होने पर अनुपकारी को अर्थात् निष्काम भाव से दिया जाता है, वह दान सात्त्विक कहा गया है।

विवेचन :- दातव्य का अर्थ है देना चाहिए। और जो कर्तव्य है वह करना चाहिए। जो प्राप्त करना चाहिए वह प्रातव्य है और जो देना चाहिए वह दातव्य। देना चाहिए यह मेरा कर्तव्य है, इस भाव से जब दान दिया जाता है तो वह सात्विक दान होता है। परंतु देने - देने में भी अंतर है। देना सात्विक भी हो सकता है, राजसी भी और तामसी भी। दान का अर्थ है जो हमें प्राप्त हुआ है, वह हम दूसरों के साथ भी बाँटें। दान जो मैं दे रहा हूँ कोई उपकार नहीं कर रहा। प्रभु ने मुझे यह दिया है, वह दूसरों को देने के लिए ही दिया है। यही समझ कर दान देना। जो कुछ मुझे प्राप्त हुआ है, वो जिसके पास नहीं है उसे देने के लिए ही वह दान है। यह जब विनम्र भाव से दिया जाता है और इसमें कोई अहंकार नहीं होता है तो यह सात्विक दान है। दान का अर्थ है अधिकार की निवृत्ति और जो स्वीकार करता है उसके लिए अधिकार की स्वीकृति। हमारे अधिकार की निवृत्ति और दूसरे के द्वारा अधिकार की स्वीकृति। जैसे कन्यादान में पिता बेटी पर अपने अधिकार का दान करता है और वह अपने उस अधिकार से निवृत्त हो जाता है और अपने दामाद को उस को समर्पित कर देता है। जिस का अधिकार वह मानता है तो यह दूसरे के द्वारा अधिकार की स्वीकृति है अर्थात यह सात्विक दान है और यह सबसे श्रेष्ठ दान है। पिता के लिए यह केवल अधिकार की निवृत्ति है। परंतु प्रेम की निवृत्ति नहीं है। क्योंकि हमने कन्या का दान किया है, परंतु प्रेम का दान नहीं किया। प्रेम तो रहेगा ही।

एक दाता को पूछा गया कि आप इतना बड़ा दान देते हो। जैसे-जैसे बड़ा दान देते जाते हो, आप इतने विनम्र होते जाते हो। यह आपने कहां से सीखा। तो वह उत्तर देता है कि **"देन हार कोई और है भेजत है दिन रैन"** अरे देने वाला तो दूसरा है मैं तो नहीं दे रहा। वह मेरे पास भेजता है और मैं आगे दे देता हूँ। मैं अपने से कहाँ दे रहा हूँ। **"लोक भरम हम पर करें, तासों नीचे नैन "** लोगों को भ्रम हो रहा है कि मैं दान दे रहा हूँ इसलिए मुझे लज्जा आ रही है और मेरे नेत्र नीचे झुक रहे हैं। इसी भाव से दिया गया दान सात्विक दान है। मैं दे रहा हूँ परंतु मैं उस पर उपकार नहीं कर रहा हूँ। उसे देने का भाग्य मुझे मिला है। भिखारी को भी दान दे रहा हूँ तो भी यह मेरे लिए पुण्य है। वह भी इसी के कारण मुझे मिला है। यही विनम्र भाव से उसे दिया तो यही सात्विक दान हैं। फिर उससे कोई अपेक्षा नहीं रखनी है। किसी को बताना भी नहीं है, क्योंकि यह मेरा कर्तव्य है और इसी भाव से देना चाहिए।

17.21

यत्तु प्रत्युपकारार्थं(म्), फलमुद्दिश्य वा पुनः|
दीयते च परिक्लिष्टं(न्), तद्दानं(म्) राजसं(म्) स्मृतम्||17.21||

किन्तु जो (दान) क्लेशपूर्वक और प्रत्युपकार के लिये अथवा फल-प्राप्ति का उद्देश्य बनाकर फिर दिया जाता है, वह दान राजस कहा जाता है।

विवेचन :- दान प्रति उपकार की वजह से नहीं देना चाहिए कि मैं दे रहा हूँ तो वह मेरा काम करेगा या नहीं। यह अपेक्षा मन में नहीं रखनी चाहिए और यह भी कि देने की इच्छा नहीं है फिर भी देना पड़ रहा है और इसकी वजह से तुम मेरा काम कर देना यह भाव भी मन में नहीं लाना है। यही प्रति उपकार की अपेक्षा है और यही राजसी दान कहलाता है। फल की इच्छा की अपेक्षा रखते हुए दान दिया जाता है तो वह राजसी दान कहलाता है। उसे देते हुए भी बहुत कष्ट होता है। किंतु वह देना पड़ रहा है इसलिए दिया जाता है। हमें पता भी है कि देनहार कोई और है। यह भगवान ने मुझे दिया है और इसको मुझे बाँटना है। इसमें मेरा कुछ नहीं है, इसी भाव से देना चाहिए।

17.22

अदेशकाले यद्दानम्, अपात्रेभ्यश्च दीयते|
असत्कृतमवज्ञातं(न्), तत्तामसमुदाहृतम्||17.22||

जो दान बिना सत्कार के तथा अवज्ञापूर्वक अयोग्य देश और काल में कुपात्र को दिया जाता है, वह (दान) तामस कहा गया है।

विवेचन :- श्रीभगवान आगे तामसी दान के संबंध में बताते हुए कहते हैं कि तामसिक दान वह है जहाँ पर जिस चीज की आवश्यकता नहीं वहाँ भी दान देना है और जबरदस्ती दे रहे हैं। उसे ही तामसी दान कहते हैं।
एक बार बाढ़ आ गई और ठंड के दिन थे। लोगों के घर बह गए थे तो उनको सोने बिछाने के लिए कपड़ा चाहिए था और खाने

को भी कुछ नहीं था। सभी लोग कम्बल लेकर गए। भोजन कोई भी नहीं लेकर गया। वे कहने लगे कि हमें भोजन चाहिए। लोग कहने लगे नहीं हम तो कम्बल ही लाए हैं आपको लेने पड़ेंगे। तभी कहते हैं कि कौन से काल में कौन से समय में किस बात की आवश्यकता होती है, यह देख कर न दिया गया दान तामसिक दान हैं। जब उसको उस चीज की आवश्यकता ही नहीं थी,तो उस दान का क्या महत्व है? हमें उनकी आवश्यकताओं को देखकर ही दान देना चाहिए। अपात्र मतलब नाचने गाने वाले पर पैसे फैंकते हैं। वह भी तो देना ही है परंतु वह तामसी दान है। फेंककर दिया गया दान कोई दान नहीं। मान सम्मान से दिया गया दान, दान कहलाता है। कुछ लोग तो वेतन भी ऐसे देते हैं जैसे कितना उपकार कर रहे हैं। वेतन भी दिखा दिखा कर दान की तरह देते हैं। हमें कोई भी दान सम्मान पूर्वक देना चाहिए। सम्मान न करते हुए दिया गया दान तामसी दान कहलाता है।

अर्जुन ने भगवान से प्रश्न पूछा है कि हम शास्त्र विधि जानते नहीं है फिर भी श्रद्धा है। भगवान कहते हैं अगर शास्त्र विधि नहीं जानते हो तो सुनो। शास्त्र विधि ना जानते हुए भी मनुष्य अच्छा कार्य कर सकता है, अच्छे कर्म कर सकता है। उसे कैसे करना चाहिए इसका मंत्र श्रीभगवान हमें बताते हैं और यही मुख्य मंत्र है। ऐसे तो भगवान ने बहुत से मंत्र दिए हैं।और सारी भगवद्गीता ही मंत्र है लेकिन यह एक सुंदर मंत्र है।

17.23

ॐ तत्सदिति निर्देशो, ब्रह्मणस्त्रिविधः(स्) स्मृतः|
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च, यज्ञाश्च विहिताः(फ्) पुरा||17.23||

ऊँ, तत् और सत् - इन तीन प्रकार के नामों से (जिस) परमात्मा का निर्देश (संकेत) किया गया है, उसी परमात्मा से सृष्टि के आदि में वेदों तथा ब्राह्मणों और यज्ञों की रचना हुई है।

विवेचन :- ॐ तत् सत् यह भगवान का दिया हुआ मंत्र है। यह तीनों भगवान के ही नाम है। भगवान ने कहा इसका जप करते हुए काम करो। जप कैसे करना है? इसका विनियोग कैसे करना है? इस मंत्र का प्रयोग कैसे करना है? यह भी भगवान आगे बताते हैं। यह बहुत ही महत्वपूर्ण श्लोक है। हम जब भी ॐ कार का उच्चारण करते हैं तो हम भगवान को पुकारते हैं। ॐ का जप करना यह भगवान को पुकारना है। ॐ तत् सत् यह तीनों ही नाम भगवान के हैं। सारी सृष्टि का आरंभ करते हुए भगवान ने यहाँ सारे निर्माण किए। यह सारे मंत्र निर्माण हुए, ब्राह्मणों का निर्माण हुआ, वेदों का निर्माण हुआ, यज्ञ का निर्माण हुआ। यह चतुर्थ अध्याय में बताया गया है कि मनुष्य के जन्म के साथ ही उसके सारे यज्ञ और कर्मों के निर्माण हो जाते हैं। भगवान ने कहा कि इसका प्रयोग कैसे करें ताकि हम शास्त्र नहीं जानते हुए भी जब कार्य करने का समय आए तो यह सब कार्य कैसे हो?

17.24

तस्मादोमित्युदाहृत्य, यज्ञदानतपः(ख्) क्रियाः|
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः(स्), सततं(म्) ब्रह्मवादिनाम्||17.24||

इसलिये वैदिक सिद्धान्तों को मानने वाले पुरुषों की शास्त्रविधि से नियत यज्ञ, दान और तप रूप क्रियाएँ सदा 'ॐ' इस परमात्मा के नाम का उच्चारण करके (ही) आरम्भ होती हैं।

विवेचन :- " तस्मात "यानी इसलिए। भगवान के तीन नाम हैं तो इसके लिए हमें ॐ कार का उच्चारण करते हुए यज्ञ, दान,तप आदि कोई भी क्रिया, कोई भी सत्कर्म, कोई भी अच्छा कार्य करना है। कार्य करने के प्रारंभ में ॐ कार का उच्चारण करना चाहिए। वेदों के मंत्रों के शुरुआत में पहले ॐ कार का ही उच्चारण होता है। ॐ का उच्चारण करके ही कार्य प्रारंभ करना चाहिए। वेद मंत्रों का पठन करने वाले लोग ॐ कार का उच्चारण सबसे पहले करते हैं। फिर उसके बाद मंत्र का उच्चारण होता है। शास्त्रों में जैसे कहा गया है वैसे कर्म करने का विधान करते हुए आरंभ हमेशा ॐ कार के उच्चारण से ही करना चाहिए। इसलिए कोई भी कार्य या सत कार्य प्रारंभ करने से पहले ॐ कहते हुए भगवान का स्मरण करना। कोई भी नया मंत्र ॐ कार से ही शुरु करना और फिर क्रिया शुरू करना।

17.25

तदित्यनभिसन्धाय, फलं(म्) यज्ञतपः(ख्) क्रियाः|
दानक्रियाश्च विविधाः(ख्), क्रियन्ते मोक्षकाङ्क्षिभिः||17.25||

तत्' नाम से कहे जाने वाले परमात्मा के लिये ही सब कुछ है - ऐसा मान कर मुक्ति चाहने वाले मनुष्यों द्वारा फल की इच्छा से रहित होकर अनेक प्रकार की यज्ञ और तप रूप क्रियाएँ तथा दान रूप क्रियाएँ की जाती हैं।

विवेचन :- " **मोक्षकाङ्क्षिभिः**" अर्थात मोक्ष की इच्छा रखने वाले या परमात्मा की प्राप्ति की इच्छा रखने वाले ॐ का स्मरण करके ही अपना कार्य ईश्वर का कार्य मानकर करते हैं। छत्रपति शिवाजी महाराज ने यह कभी नहीं कहा कि मैं मेरे स्वराज्य की स्थापना करने जा रहा हूँ। वह हमेशा कहते थे कि यह शिव भगवान का राज्य है। यह उन्हीं की इच्छा है और मैं उन्हीं के लिए कार्य कर रहा हूँ। यह सब उनके लिए ही है। यह कार्य अपने कर्मों को सिद्ध करने का अत्यंत सरल उपाय हैं कि सब कुछ उसी के लिए कर रहा हूँ, यही भाव मन में रखते हुए सभी काम परमात्मा के लिए ही करते जाना चाहिए। जिस प्रकार हम भगवान को एक फूल चढ़ाने जाते हैं और सामने फूलों की टोकरी रखी है तो हम उसमें से एक सुंदर सा फूल चुन लेते हैं और भगवान को अर्पण कर देते हैं। वैसे ही परमात्मा के लिए जब कर्म किया जाता है तो वह कर्म अच्छा होने लगता है, क्योंकि यह भगवान के लिए कर रहे हैं। इसलिए बहुत ही अच्छा होना चाहिए। घर में सबके लिए भोजन बना रहे हैं तो मन में यही भाव रखकर बनाएं कि घर में जो भी है, सब भगवान स्वरूप है। यह कार्य मुझे भगवान ने ही सौंपा है। उनके लिए ही मैं कर रही हूँ। तो भोजन भी प्रसाद बन जाएगा। इससे सबके मन में प्रसन्नता आ जाती है। जो भी कर्म कर रहा हूँ यज्ञ, तप, दान और जिसको दे रहा हूँ वह लेने वाला भी भगवद स्वरूप है। भगवान मुझे दे रहे हैं इसलिए मुझे देने का अवसर प्राप्त हुआ है यही भाव रखते हुए कार्य करना है।

सन्त ज्ञानेश्वर महाराज इतनी सुंदर बात लिखते हैं कि किसी बालक का जन्म होता है तो उसका कोई नाम नहीं होता है। लेकिन सभी एक ही नाम से पुकारना शुरू कर देते हैं तो वह बालक हाँ कहने लगता है। वैसे ही ॐ नाम पुकारने से भगवान भी हाँ कर देते हैं। ॐ भगवान का ही नाम हो गया है। ऐसे ही उनके नाम का स्मरण करना यही ब्रह्मा के तीन प्रकार के नाम है। यही उपनिषदों के वचन है। उपनिषदों से आए हुए शब्द हैं। सभी को ॐ तत्सत और इसका नित्य आचरण करना चाहिए। कर्म के शुरुआत में ॐ शब्द का उच्चारण करना और यह उसके लिए ही कर रहा हूं। यह भाव रखते हुए तत्सत शब्द का उच्चारण करना चाहिए। तत कहकर भगवान को अर्पण कर दें। ॐ श्री कृष्णार्पणमस्तु, ॐ श्री रामचंद्र अर्पणमस्तु तथा जिस रूप में हम परमात्मा को देखना चाहते हैं। उसी रूप को मन ही मन तत् कहते हुए अर्पण कर देना चाहिए। परंतु अर्पण करते हुए, मैंने किया यह भाव अभी मन में है तो हमारा कर्म रह गया। हमें उस भाव को समाप्त कर देना पड़ेगा।

संत ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं कर्म किया जैसे नमक पानी में घोल दिया। अब नमक तो रहा नहीं। लेकिन पानी में खारापन अभी शेष है। वह भी समाप्त हो जाना चाहिए। सब कुछ ब्रह्म स्वरूप हो जाना चाहिए। ॐ तत् सत् कहने पर, मैंने कर्म किया यह भाव समाप्त करने के लिए सत् नाम का उच्चारण करना चाहिए।

17.26

सद्भावे साधुभावे च, सदित्येतत्प्रयुज्यते|
प्रशस्ते कर्मणि तथा, सच्छब्दः(फ्) पार्थ युज्यते||17.26||

हे पार्थ ! सत्- ऐसा यह परमात्मा का नाम सत्ता मात्र में और श्रेष्ठ भाव में प्रयोग किया जाता है तथा प्रशंसनीय कर्म के साथ 'सत्' शब्द जोड़ा जाता है।

विवेचन :- सत् शब्द का उपयोग कैसे किया जाता है। मन में सद्भाव लाने से शब्द का प्रयोग किया जाता है। श्रेष्ठ भाव परमात्मा का कार्य है और उनको अर्पण हो गया है और उनके सिवाय कोई नहीं है यह भाव जब जागृत होने लगता है तब सत् शब्द का प्रयोग किया आता है। जो भी है सब सच है उसका ही है। मैं भी नहीं रहा हूँ जब तक मेरा - मैं रहेगा, तब तक द्वैत ही रहेगा अर्थात दो ही रहेंगे। वह भगवान और उसको अर्पण करने वाला मैं। यदि मैं रह गया तो सब व्यर्थ हो जाता है क्योंकि जब तक मैं का भाव रहता है तो भगवद दर्शन नहीं हो सकते। संत कबीर जी कहते हैं "**जब मैं था तब हरि नहीं था, अब हरि है तो मैं नहीं** " हरि ही सब कुछ है " हरि कहते ही मैं समाप्त हो गया।

"प्रेम गली अति सांकरी यामे दो न समाय " तो प्रेम का भाव ऐसा है इसमें दो नहीं रह सकते, इसमें एक ही रह सकता हैं और वह परमात्मा। (जो कुछ किया तुमने किया मैंने कुछ नहीं किया, कहो कहीं यह तुम किया तो तुम ही हो मुझ माही) मैंने नहीं किया। भगवान यदि आप कह रहे हो कि यह तुमने किया, तो मेरे भीतर कौन हैं ? आप ही तो हो। यह भाव जागृत होते ही सब कुछ सत् बन जाता है और जो रहता है वह परब्रह्म बन जाता है। कितना सुंदर मंत्र है यह। गीता पाठ करते हुए लोग हमेशा पूछते हैं कि गीता पढ़े, पढ़ाई नहीं जीवन में लाए। तो पढ़ना समझ गए, पढ़ाना समझ गए, जीवन में लाना क्या बात है? यही भगवद्गीता जीवन में लाना है। प्रत्येक कार्य को करते समय ॐ करके भगवान का स्मरण करना। सत् कहते हुए उसके लिए मैं कार्य कर रहा हूँ, यह भाव मन में रखना और सच कह देना कि जो कुछ है वह उसका है मेरा कुछ भी नहीं है। यही भाव रखकर सब उसे अर्पण कर देना। ॐ तत् सत् मंत्र का प्रयोग करते हुए परमात्मा को अर्पण कर देना।

17.27

यज्ञे तपसि दाने च, स्थितिः(स्) सदिति चोच्यते|
कर्म चैव तदर्थीयं(म्), सदित्येवाभिधीयते||17.27||

यज्ञ तथा तप और दान रूप क्रिया में (जो) स्थिति (निष्ठा) है, (वह) भी 'सत्' - ऐसे कही जाती है और उस परमात्मा के निमित्त किया जाने वाला कर्म भी 'सत्' - ऐसा ही कहा जाता है।

विवेचन :- यज्ञ, दान और सारे कर्मों को करने में यह स्थिति आ जाती है। मन की स्थिति, अंतरंग की स्थिति। यही सब अवस्था परमात्मा के साथ एकरूपता की अवस्था है और उसके लिए किए जाने वाले सारे कर्म तत् के लिए यानी कि परमात्मा के लिए ही होते हैं। जब सभी कर्म भगवान को अर्पण कर देते हैं, तो सारा कर्म ही सत्कर्म हो जाता है। कोई भी दोष रह जाए तो वह भी शुद्ध हो जाता है। इसलिए पूजा होने के बाद भगवान का नाम लेने के लिए कहते हैं तो सभी दोष नष्ट हो जाते हैं। भगवान का नाम स्मरण करने से सारे दोष समाप्त हो जाते हैं। यही हम भगवान को अर्पण करते हैं। हम अच्छा काम करते हैं तो तुरंत ही कहते हैं कि मैंने किया। मैं करता हूँ अन्य कोई नहीं कर सकता है और जब गलती हो जाती है तो कहते हैं - हे भगवान ! यह मुझसे क्या करवाया? भगवान को अर्पण करते हैं तो हमने किया। भगवान कहते हैं सत्कर्म करते रहो और परमात्मा को अर्पण करते जाओ तो हमारे द्वारा होने वाली सारी गलतियां भी शुद्ध हो जाती हैं।लेकिन श्रद्धा को मन में ना रखते हुए कोई भी कर्म करने से तो वह सारा असत्य हो जाता है।

17.28

अश्रद्धया हुतं(न्) दत्तं(न्), तपस्तप्तं(ङ्) कृतं(ञ्) च यत्|
असदित्युच्यते पार्थ, न च तत्प्रेत्य नो इह||17.28||

हे पार्थ ! अश्रद्धा से किया हुआ हवन, दिया हुआ दान (और) तपा हुआ तप तथा (और भी) जो कुछ किया जाय, (वह सब) 'असत्' - ऐसा कहा जाता है। उसका (फल) न तो यहाँ होता है और न मरने के बाद ही होता है अर्थात् उसका कहीं भी सत् फल नहीं होता।

विवेचन :- :-श्रद्धा मन में ना रखते हुए कितना भी कर्म कर लो। बड़े-बड़े काम कर लो। बड़े-बड़े दान दे दो। बड़े से बड़ा तप कर लो। बड़े-बड़े यज्ञ कर लो। जो भी बड़े-बड़े कार्य कर लो लेकिन श्रद्धा न रखते हुए किए गए वह असत् ही कहलाएंगे और इस लोक में भी उसका कोई लाभ नहीं मिलने वाला और मृत्यु के बाद भी उसका कोई लाभ नहीं मिलेगा। वह सभी व्यर्थ हो जाएंगे। भगवान का अनुसंधान बनाए रखते हुए ॐ तत् सत् मंत्र का उच्चारण करते हुए परमात्मा के लिए कार्य करते रहना यही भगवद्गीता जीवन में लाना है। इसी प्रकार से अपने सारे कर्म करते रहना।

प्रश्नोत्तरी

प्रश्न कर्ता :- बजरंग भैया ।

प्रश्न :- क्या ॐ नमः शिवाय का उच्चारण महिलाएं कर सकती हैं?

उत्तर :- हाँ जी महिलाएं भी ॐ नमः शिवाय का उच्चारण कर सकती हैं। किसी गुरु से पूछ कर भी कर सकते हैं। उच्चारण कैसे करना है यह शास्त्रों में बताया गया है। पुरुष ॐ का जाप लंबे स्वर में करते हैं, उसमें दीर्घ ॐ कार किया जाता है जबकि महिलाएं समान स्वर में जप करती हैं।

प्रश्न कर्ता :- वनिता दीदी

प्रश्न :- क्या गीता सीखते सीखते हमें ज्ञानेश्वरी पढ़नी चाहिए?

उत्तर :- ज्ञानेश्वरी भगवद्गीता का ही भाष्य है। भगवद्गीता का अर्थ मराठी में लोगों को समझ में आ जाए। इसलिए मराठी भाषा में उस को विस्तार से समझाया है। ज्ञानेश्वर मौली जी ने इसमें बहुत सारे अर्थ स्पष्ट किए हैं। तो भगवद्गीता के साथ ज्ञानेश्वरी का पठन करना यह तो पूछने की बात ही नहीं है नेकी और पूछ पूछ। यह तो पढ़ना ही चाहिए।

प्रश्न कर्ता :- जया दीदी

प्रश्न :- जो पात्र है उसे दान देना चाहिए किंतु जो पता ही नहीं है किसे दान कर रहे हैं तो क्या क्या उसे दान देना चाहिए?

उत्तर :- उसे दान नहीं देना चाहिए। उसकी पूरी जानकारी होनी चाहिए। तभी उसे दान करना चाहिए भगवे वस्त्र धारण करें तो इसका मतलब संन्यासी है या नहीं। परंतु उसकी परीक्षा लेनी चाहिए। सत्पुरुष को पहचान कर ही उसे सुपात्र समझकर ही दान देना चाहिए। कुपात्र का कोई दान नहीं होता है। हमें किसको दान देना है, वह सोच समझ कर देना चाहिए। भगवान कहते हैं कि व्यक्ति भी योग्य होना चाहिए तभी दान देना चाहिए।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां(म्) योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे श्रद्धात्रयविभागयोगो नाम सप्तदशोऽध्यायः।।

इस प्रकार ॐ तत् सत् - इन भगवन्नामों के उच्चारणपूर्वक ब्रह्मविद्या और योगशास्त्रमय श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषदरूप श्रीकृष्णार्जुनसंवाद में 'श्रद्धात्रयविभागयोग' नामक सत्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!

हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !

संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!

आइये हम सब गीता परिवार के इस ध्येय से जुड़ जायें, और अपने इष्ट-मित्र -परिचितों को गीता कक्षा का उपहार दें।

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||

||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||